International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 18-21

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 18-21
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 18-03-2015
Accepted: 03-04-2015

कुसुम मौर्या
दिल्ली विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग

ब्वततमेचवदकमदबम
कुसुम मौर्या
दिल्ली विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग

यास्कीय निरुक्त में ज्योतिष–तत्त्व 'वैश्वानर' की विश्लेषणात्मक विवेचना

कुसुम मौर्या

'वैदिक वाङ्गमय' भारतीय संस्कृति की वो बहुमूल्य धरोहर है जिसकी प्रशंसा समस्त संसार करता है, और यह वैदिक संपदा **'मानवीय सृष्टि के साथ–साथ समस्त ब्रह्मांड के कल्यणार्थ' 'दिव्यज्ञान संपदा'** को अंगीकृत करके अपने गूढ़ार्थों में इनको संजोए हुए है।[1] इस वैदिक ज्ञान राशि को समझना इतना सरल नहीं की वह अपने गूढ़ार्थ को सभी के सम्मुख प्रकट कर दे बल्कि– 'भारतीय दार्शनिक परंपरानुसार यह उपासको को ही प्राप्त होती है अथवा स्वयं जिसको चाहती है उसके सम्मुख स्वयं को प्रकट करती है। वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने भी वेदार्थ की गूढ़ता को यह कहकर प्रकट किया है– "वेद की वेदता इसमें है– 'वेद उन उपायों का वर्णन करता है' जो न प्रत्यक्ष द्वारा जाने जा सकते हैं और न अनुमान द्वारा"–

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतद्विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।"

स्पष्ट ही है– प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा तो हम जैसे साधारण मनुष्य भी पदार्थों को जानते ही हैं, किन्तु वेद के ऋषियों की विशेषता यह है कि– 'वे अपनी क्रान्तदर्शिता द्वारा उन धर्मों का भी साक्षात्कार कर लेते हैं जिन्हें हम मनुष्य प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा नहीं जान सकते।' वेद के इन्हीं गूढ़ार्थों को समझने के लिए प्राचीन काल से ही मानव प्रत्यत्नशील रहा। किसी भी समाज के साहित्य को समझने के लिए जिस प्रकार शब्दकोष अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देते हैं उसी प्रकार वैदिक साहित्य को समझने के लिए अंतिम सोपान 'षड्वेदांङ्गों'[2] के अन्तर्गत निरुक्तशास्त्र वेद का अत्यन्त महत्वपूर्ण 'कोशग्रन्थ' है। क्योंकि **निरुक्तशास्त्र का मूल उद्देश्य ही यह है कि– वेदों के गूढ़पदार्थों और रहस्यमय प्रतीकों को उद्घाटित करना, जिससे वैदिक ज्ञान की गहनता को आत्मसात् किया जा सके।**[3] आचार्य दुर्गनिरुक्तवृत्ति के अनुसार– 'चौदह प्रकार के निरुक्त प्राप्त होते थे, किन्तु यास्ककृत निरुक्त[4] अत्यंत प्रसिद्ध हुआ।' इन पर अनेक भाष्यग्रन्थों, टीकाग्रंथों की रचनाएँ हुई। इनमें भगवद्दतकृत भाष्य वैज्ञानिक दृष्टिकोणात्मक है, यहीं पर ब्रह्माण्डीय सृष्टि की रचना में प्रवृत्त ज्योतिष तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें वैश्वानर शब्द एक ऐसा तत्त्व है जिसके अभाव में सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वैश्वानर शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ और उसकी समीक्षा ब्रह्माण्ड के अनेक अनसुलझे रहस्यों की ओर संकेत करती है। किस प्रकार करती है? यह एक विवेचनीय विषय है।

'निरुक्तशास्त्र' निघण्टु का व्याख्या ग्रंथ होने से वैदिक शब्दों के गूढ़ अर्थ को प्रकट करता है जिनमें 'वैश्वानर' शब्द की निरुक्ति पर यास्क ने विविध निर्वचन किए हैं।[5] यहाँ वैश्वानर को अग्नि, आदित्य, पृथ्वीस्थानीय अग्नि, जठराग्नि कहा गया है। वैश्वानर शब्द का वास्तविक अर्थ– 'वैदिक वाङ्गमय में यत्र तत्र वर्णित ज्योतिष तत्त्वों के माध्यम से ही स्पष्ट होता है' क्योंकि 'वैश्वानर शब्द का ज्योतिषशास्त्र से एक गहरा संबंध है।'

I- वैश्वानर शब्द का निर्वचन–

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से निर्वचन की प्रक्रिया द्विविध है– शब्द परक, अर्थपरक। **शब्दपरक निर्वचन** = वैश्वानरः पुं. (विश्वश्चासौनरश्येति। नरे संज्ञायाम् /9/3/129/ इति दीर्घः) ततो विश्वानर एव। स्वार्थो अण्। यद्वा 'विश्वान् नरान् इति लोकात् लोकान्तरं नयति।'[6] **अर्थपरक निर्वचन=** अर्थपरक वैश्वानर के विविध निर्वचन प्राप्त होते हैं। यथा– अग्नि,[7] जठराग्नि[8], सूर्य,[9] ईश्वर/परमात्मा[10]। अन्यत्र= (1) अग्निषोमात्मकं जगत्।[11] अग्निर्वैदेवानामन्नादः।[12] (2)संवत्सरो वै यज्ञः प्रजापतिः।[13] ऋतवः संवत्सरः।[14]

वैदिक वैश्वानर अग्नि की विश्लेषणात्मक विवेचना

A) ब्रह्माण्ड के चौदह लोक और वैश्वानर अग्नि का स्वरूप –

वेद प्रतिपादित 'चौदह लोकों'[15] का आधार 'ब्रह्माण्ड'[16] है। ब्रह्माण्ड में "अधोवर्तीलोक तथा मध्यलोक से ऊर्ध्वलोक पर्यन्त क्षेत्र को 'त्रिलोक' की संज्ञा देकर विष्णु द्वारा तीन पग में समस्त ब्रह्माण्ड को नापने का वर्णन" वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है।[17] जिसका तात्पर्य अग्नि और सोम के स्वरूप से स्पष्ट किया जा सकता है। यथा–

ब्रह्माण्ड

ऊर्ध्ववर्ती लोक	मध्यलोक	अधोवर्तीलोक[18]
सत्य– स्वयंभू	भू = पृथ्वी	अतलम् = सुमात्रा
तपः – मध्य अंतरिक्ष		वितलम् = बोर्निया
जनः – प्रजापति परमेष्ठी		सुतलम् = न्युगिनि
महः – मध्य अंतरिक्ष		नितलम् = जावा
स्वः – सूर्य लोक		रसातल = इण्डोनेशिया
भवः – मध्य अंतरिक्ष (चंद्रमा)		महातल =आस्ट्रेलिया
		पाताल = न्युजीलैंड

ब्रह्माण्ड में स्थित अग्नि व सोम का सम्बन्ध इन ऊध्ववर्ती लोकों से है।[19] सृष्टि की प्रक्रिया इन अग्नि व सोम के परस्पर संयोग से सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। (सूर्य के ताप तथा चंद्रमा की शीतलता के परिणाम स्वरूप ही पृथ्वी पर जीवन संभव होता है।) इन चौदह लोकों में 'सत्य से मध्यलोक पर्यन्त' (संयती, रोदसी, क्रन्दसी) इसे त्रिलोक का निर्माण होता है।[20] इन त्रिलोकों में तीन द्यौ, तीन पृथ्वी तथा तीन अंतरिक्ष स्वीकार किए गए हैं। जैसेः–

भूः=पृथिवी
भुवः=अन्तरिक्ष } रोदसी
स्वः= द्यौ

स्वः=पृथिवी
महः=अन्तरिक्ष } क्रन्दसी
जनः=द्यौः

जनः=पृथ्वी
तपः=अन्तरिक्ष } संयती
सत्यम्=द्यौः

इन तीन लोकों में से (ऊध्ववर्ती लोक 6+भू मध्यलोक) पृथिवी अग्नि तत्त्व प्रधान लोक है जबकी अन्तरिक्ष सोम तत्त्व प्रधान लोक है। इन छः लोकों में प्रत्येक भू अपने स्वः की परिक्रमा कर रहा है लेकिन वैदिक मान्यतानुसार इनमें सूर्य भी स्थिर नहीं है, सूर्य परमेष्ठी की परिक्रमा करता है, परमेष्ठी स्वयं भू की परिक्रमा करता है। और स्वयं 'स्वयंभू' किसी की परिक्रमा नहीं करता।

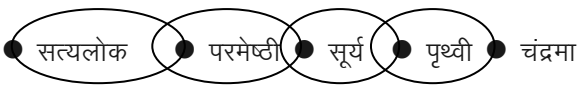

तीन भूमि, तीन द्यौ की बात ऋग्वेद बारंबार दुहराता है।[21] ऋग्वेद में पुनः' कहा गया है– इन सात में से प्रथम छः तो रज है, गति के कारण, सातवाँ सत्यलोक अज है, क्योंकि वह परोरजा है और सत्त्वप्रधान है अथवा अज है।[22] इसके अंतर्गत ही प्राणों का लोक माना जाता है। जहाँ गति है उन्हें ही ऋषि–प्राण कहा गया है। जहाँ गति में स्थिति बिलकुल भी नहीं होगी वहाँ गति इतनी तीव्र होगी की पदार्थ दो स्थानों पर युगपद ही उपस्थित होगा अतएव यजुर्वेद में वर्णित– **"तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत।[23]**

वैदिक वाङ्गमय के अनुसार क्षोभ से सूर्य का जन्म होता है, जो समुद्र अन्तर्गत एक जल बिन्दु समान है। **'रोदसी'** के अन्तर्गत द्यावापृथिवी है, **'क्रन्दसी'** के अन्तर्गत परमेष्ठी, इस परमेष्ठी से ही क्षोभ का प्रारंभ होता है। इसके सोम से ही सूर्य अपनी अग्नि को प्रज्वलित करता है।[24] इनमें चन्द्रमा (भुवः स्थित) परः ज्योति, भू–पिण्ड रूप ज्योति, सूर्यपिण्ड स्व ज्योति है तथा परमेष्ठी ऋतपिण्ड[25] और स्वयं भू सत्यपिण्ड है। इस त्रिलोक में (संयती, रोदसी, क्रन्दसी) प्रजापति द्वारा कामप्त यज्ञ हो रहा है जिससे विश्व की रचना हो रही है।[26]

इस प्रकार समस्त 14 लोकों के अन्तर्गत त्रिलोक वृत्त की विवेचना से यह ज्ञात होता है कि –तीन पृथिवी, तीन अन्तरिक्ष और तीन द्यौ हैं। इसका गूढ़ार्थ यह है कि– "अग्नि का प्रारंभिक रूप ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। और प्रकृति की दो शक्तियाँ अग्नि और सोम ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व है– **"प्राणापानावग्निषोमो प्रसवाय सविता प्रतिष्ठित्या अदितिः।"**[27] अर्थात्– अग्नि सोम प्राण (उच्छवास) और अपान (निःश्वास) हैं। सविता प्रेरणा देने के लिए है तथा अदिति अवस्थान आश्रय है। सृष्टियज्ञ में अग्नि और सोम दो पूरक शक्तियाँ द्रव्य भाग व विकिरण है। अदिति आधारभूत सत्ता है जो दोनों की सम्मिलित शक्ति है, अदिति जगत का उपादान कारण ;डंजमतपंस बंनेमद्ध है, सविता (ईश्वर) प्रेरणा देने वाला निमित्त कारण ;मपिबपमदज बंनेमद्ध है। ऋग्वेद इस विषय पर इस प्रकार प्रकाश डालता है–

"उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः।।"[28]

(विश्वानरः) समस्त श्वास लेने वाले प्राणियों को प्राणपान से युक्त कर स्थायित्व प्रदान करने वाले **(देवः)** प्रकाशक **(सविता)** जगत उत्पादक देव ने **(विश्वजन्यं)** विश्व को उत्पन्न करने वाली **(अमृतं)** अविनाशी **(ज्योतिः)** प्रकाशमय तेज शक्ति का **(उत् अश्रेत)** पूर्ण रूप से **(क्रत्वा, क्रतुः)** इस ज्ञानमय योग्यता से (देवानाम) देवों की **(अजनिष्ट)** उत्पत्ति की **(अकः)** टेढे मेढ़े चलने वाले **(विश्वं भुवनं उषाः)** समस्त लोक एवं सृष्टिकाल **(चक्षुः)** ज्ञान चक्षु से **(आविः)** रक्षित हुए।

अतः अग्नि में समस्त पृथिवी स्थानीय देवों का, वायु में समस्त अंतरिक्ष स्थानीय देवों का, तथा आदित्य में समस्त द्यु स्थानीय देवों का समावेश हो जाता है।[29] यास्काचार्य ने स्पष्ट किया है कि– "पार्थिवाग्नि ही अग्नि नहीं है उत्तरवर्ती दो ज्योतियाँ– वायु और सूर्य भी अग्नि ही हैं।[30] इस प्रकार 14 लोकों में अग्नि का प्रसार है। यास्क इस अग्नि को वैश्वानर कहते है– **"विश्वानरावित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी।"**

ठद्ध वैदिक व आधुनिक ज्योतिषशास्त्राानुसार ब्रह्माण्ड से विश्वोत्पत्तिः–

ब्रह्माण्ड में ग्रहों की स्थिति भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों की मान्यतानुसार द्विविध पाई जाती हे। एक ओर सूर्य को केन्द्र मानकर अन्य ग्रहों द्वारा उसकी परिक्रमा, दूसरी ओर भू को केन्द्र मानकर सूर्य का क्रांतिवृत्त पर परिभ्रमण और सूर्य द्वारा समस्त 12 राशियों के भोग स्वरूप **'वर्ष'**, वैदिक ऋषि इसे ही संवत्सर की संज्ञा देते हैं। वैदिक मान्यतानुसार यही विचारधारा **'द्वादशआदित्य'** को स्वीकार करती है–

"इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा।
अंशुर्विवस्वान् त्वष्टा च सविता विष्णुश्च।।[31]

यह आदित्य की द्वादश अवस्थाएँ हैं। यही यास्कानुसार वैश्वानर के द्वादश कपाल है।[32] आदित्य का संबंध इक्कीस से जोड़ते समय बारह मास, पांच ऋतु, तीन लोक के बाद आदित्य को इक्कीसवां माना है।[33] आदित्य का सभी ऋतुओं से संबंध है।[34]

ब्रह्मानन्द उनियाल शास्त्री की कल्पना अनुसार ब्रह्माण्ड में स्थित ग्रहों की स्थिति इस प्रकार हैः–

ज्योतिष शास्त्रानुसार सूर्य क्रांतिवृत्त पर 12 राशियों का भोग करता हुआ, पृथ्वी के ताप को प्रभावित करता है, जिससे 'ऋतुओं की उत्पत्ति' होती है। जिसके परिणाम स्वरूप समस्त चराचर जगत का निर्माण होता है।[35]

इसलिए ऋग्वेद '**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'[36] कहता है। लेकिन वेद वर्णित यह सूर्य स्वयं प्रलय काल में नाशवान कहा गया है, क्योंकि वेद वर्णित "परमेष्ठी आपः" से यह स्वयं ईंधन प्राप्त करता है। और परमेष्ठी से पूर्व 'स्वयंभू/सत्यलोक' स्थित है, जिस पर समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हुए हैंः–

"वैश्वानरं विश्वहा दीदिवासं मन्त्रेरग्निं कविमच्छावदामः।
यो महिम्ना परिबभूबोर्वोतावस्ताहुत देवः परस्तात्।।[37]

वेद वर्णित आद्यशक्ति अदिति त्रिवर्गी (मित्र, वरुण, अर्यमा) है।[38] इसमें मित्र ऋणात्मक कण समुदाय, वरुण धनात्मक कण समुदाय है। जिनकी परस्पर संयोग क्रिया 'प्रकृति का द्रव्य भाग' बनाते है और अर्यमा उदासीन विकिरण तरंग है। सृष्टि में नियोजित होते ही ये तीनों वर्ग क्रियाशील होते है– '**अयं ही नेता वरुणो ऋतस्य**'। ब्रह्मानन्द उनियाल शास्त्री (ब्रह्माण दर्शनम्) के अनुसार उपर्युक्त चित्रानुसार ग्रहों की स्थिति में ब्रह्माण्ड तीन भाग में विभक्त हैः–

1. पृथ्वी उभयावेशित (धन व ऋण आवेश युक्त) भाग 'शिव का लिंगेन्द्रिय' है।
2. चन्द्रमा से शुक्र पर्यन्त धनावेशित भाग पार्वती की योनि है।
3. सूर्य से शनि पर्यन्त भाग ऋणावेशित है और पृथ्वी से शुक्र पर्यन्त भाग आकाश गंगा 'तुषार कणों' की जन्मदायक है जिसके कारण पृथ्वी से देखने पर 'आकाश मंडल सदैव नीला दिखाई देता है। यही क्षेत्र समस्त चराचर जीव जगत की जन्मदात्री पृथ्वी से शुक्र ग्रह पर्यन्त भाग है जो जीवन के लिए आवश्यक तत्वों का निर्माण करता है। सूर्य का ऋणावेशित भाग इसे उद्वेलित करता है जिससे पृथ्वी पर (सूर्य अयन विभाजन के परिणाम स्वरूप) विविध ऋतुएँ उत्पन्न होती हैं। '**मित्रो राजाना अर्यमा अपः द्युः**।' प्रकृति की यही उद्वेलित अवस्था आपः/माया कही जाती है। समस्त ब्रह्माण्ड का उद्भव, विकास, संहार का कारण मित्र, वरुण अर्यमा हैं। जिसमें वरुण (धनावेशित चन्द्रमा) सृष्टि प्रक्रिया का मूल कारण है। सूर्य और चन्द्रमा से ही पृथ्वी पर जीवन है। ऋग्वेद के 10 मण्डल के 88 तंत्र का देवता सूर्य एवं वैश्वानर है– **"स एष वैश्वानरो विश्वरुपः प्राणोग्निरुद्यते।"**

अर्थात् यही वैश्वानर अग्नि अनेक रूपवाली प्राणशक्ति का उदय करती है। यथा– "विश्वान् नरान् नयति, अथवा 'विश्वान् अर् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि।"[39]

C) वैश्वानर की प्रक्रिया से मानवीय सृष्टिः–

यह वैश्वानर अग्नि तीनों (अग्नि, वायु, आदित्य) का समन्वय है, किन्तु 'अग्नि तत्त्व' पृथ्वी पर प्रमुख होने से इसे अग्नि कहा जाता है–

"स यः स वैश्वानरः। इमे स लोकाः। इयमेव पृथिवी विश्वमग्निर्नरः। अन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरः। द्यौरेव वि श्वमादित्यो नरः।[40]

"वैश्वानर अग्नि मानवीय शरीर में 7 धातुओं को बनाती है। सात धातुएँ ही वाक् है।[41] उन धातुओं में जहाँ तक रक्त है वहाँ तक प्रज्ञान–आत्मा है। यही प्राज्ञ, तैजस, वैश्वानर का अधिष्ठाता है। शरीर पार्थिव है उसकी माता पृथिवी है। प्राण इस शरीर में विचरण करता है इसीलिए प्राणवायु को मातरिश्वा कहा जाता है। प्रज्ञान/आत्मा के अभाव में भोग संभव नहीं है। अतएव जठराग्नि को वैश्वानर तथा भोज्य पदार्थ को सोम/अन्न कहा गया है। जठराग्नि जब भूख को जागृत करती है तब उसमें अन्न रूपी सोम की अहुती देनी पड़ती है। यह अन्न रस रूप में परिणत हो जाता है जिसे रुधिर, मांस, मेद, अस्ति, मज्जा तथा शुक्र रूपी सात धातुएँ बनती है। ये घन है इसलिए ये सभी अग्नि के कार्य हैं तत्पश्चात् शुक्र के मंथन से ओज उत्पन्न होता है जो शरीर के बाहर अंतरिक्ष में रहता है। अन्तरिक्ष देव वायु '**ओज**' के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। महापुरुषों के चित्रों में यह ओज '**आभामण्डल**' के रूप में प्रदर्शित किया जाता है यही शुक्र का सार है। शुक्र पर्यन्त हमारा घनस्वरूप है, किंतु ओज हमारा तरल रूप है। पुनः ओज के पश्चात् मन का निर्माण होता है–

"ओज का मंथन होने पर मन का निर्माण होता है यह सोम रस है अन्न से उत्पन्न होने वाले तत्त्व में यह अंतिम है। यह सबसे सूक्ष्म है।"

यह हमारा विरलरूप हैं सबसे सूक्ष्म होने के कारण यह सबको अध्ष्ठिाता है समस्त क्रियाकलाप इसी के माध्यम से किए जाते हैं।

यत् प्रज्ञानमुत चेतोधृतिश्च यज्जयोतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते कि×चन कर्म्म क्रियते, तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।[42]

इस प्रकार ब्रह्माण्डीय अग्नि से मानवीय मानसिक सृष्टि पर्यन्त अग्नि का विस्तार है। इस अग्नि को ही इसके कर्म भेद के आधर पर वैदिक ऋषि इसे विविध संज्ञा प्रदान करते है, किन्तु मूलभूत अग्नि एक ही है। **वैश्वानर अग्नि पृथिवी अग्नि की संज्ञा है जो भूः भुवः स्वः में हो रहे सृष्टि प्रक्रिया के फलस्वरूप समस्त चराचर जगत का निर्माण करके मानवीय सृष्टि की रचना करती है।** वैदिक ऋषि समस्त चराचर जगत् में 'मानवीय सृष्टि' को ही सर्वोत्तम उद्घोषित करते हैः–

'नरो वै देवाना ग्रामः'[43] तथा– **"विश्वेहीदं देवास्मो यन्मनुष्यः"**[44] अर्थात् 'नर देवो का समूह है।' तथा "मनुष्य में समस्त देव निवास करते हैं।"

1. इष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहारयोलौकिकमुपाय यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। (ऋú भाष्य भूमिका, पृú 2)
2. द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापरा च तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।" (मुण्डकोपनिषद 1/1/4–5)
3. साक्षात्कृतधर्माण..... असाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशनमन्त्रान्संप्रादुः। उपदेशाय..... ग्लायन्तोऽवरे ..... समाम्नासिषु वेदं च वेदाङ्गानि च।। (निरुक्त 1.6)
4. वैदिक शब्दकोश 'निघण्टु' का व्याख्या ग्रंथ ही निरुक्त नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें डॉú सिद्धेश्वर मतानुसार 1298 शब्दों, 6000 मंत्रों की आंशिक या समग्र, व्याख्या वेद जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत कि गई है।
5. वैश्वानरः कस्मात्..... विश्व एनं नरा नयन्तीति वा।..... प्रत्यतः सर्वाणि भूतानि.... वैश्वनानरः संयतते सूर्येण। ..... मध्यम इत्याचार्याः। वर्षकर्मणा ह्येनं स्तौति। अथासावादित्य इति पूर्वे याज्ञिकाः। ... अथापि वैश्वानरीयो द्वादश कपालो भवति।..... द्वादशविधं कर्म। असौ वा आदित्योऽग्निर्वैश्वानरः।। 7/20–30।।
6. शब्दकल्पद्रुम कोश, राजाराधकान्तदेव।
7. (1) संस्कृति हिन्दी कोश वामन शिवराम आप्टे, (2) अमरकोश, (3) निरुक्त।
8. (1) संस्कृति हिन्दी कोश वामन शिवराम आप्टे, (2) शब्दकल्पद्रुम कोश, (3)वाचस्पत्यम् कोशनिरुक्त
9. निरुक्त 7/23
10. वामनशिवराम आप्टे कोश– "सर्वात्मैध ईश्वरो वैश्वानरो।
11. बृहज्जाबालोपनिषद (2.4)
12. तैत्तिरीय संहिता (।।5/4/9/2।।)
13. शतपथ ब्राह्मण (11/1/1)
14. जैमिनीय ब्राह्मण (3/154)
15. 'चतुर्विध सकलस्थूलशरीरजातं भोग्य रूपान्नपानादिकमेतदायतनभूतभूरादिचतुर्दश भुवनान्येतदायतनभूतं ब्रह्माण्डं चैतत्सर्वमेतेषां.....।' (वेदान्तसार अपवाद निरुपण)।
16. विद्वन्मनोर×जनी टीका –
"एत एव स्वावरणभूतलोकालोकपर्वतः तद्बाहय पृथिवी

तद्बाह्यसमुद्रैः सहिता ब्रह्माण्डमित्युच्यते।"

17. (1) यस्योरुषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा (ऋú 1/154/2)
(2) य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा (ऋú 1/154/4)

* ब्रह्माण्ड तीन भागों में विभक्त है– ऊर्ध्ववर्ती (सत्य से भुवः पर्यन्त छः लोक), मध्य (भू/पृथ्वी लोक) अधोवर्ती (अतल से पाताल पर्यन्त) लोक। इनमें ऊर्ध्ववर्ती लोक में सत्य स्वयंभू है। जनः परमेष्ठी / प्रजापति है। स्वः सूर्य लोक है। ये तीन लोक अग्नि प्रधान हैं। तत्पश्चात् तपः, महः और भुवः मध्यस्थानीय अंतरिक्ष है जो सोमतत्त्व प्रधान हैं। पुनः मध्यलोक पृथ्वी लोक को कहा गया है जो अग्नि प्रधान है। मध्यलोक में ऊर्ध्ववर्ती समस्त लोकों का समुच्चय **त्रिलोक** कहलाता है। जिससे समस्त चराचर जगत के निर्माण की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। (वेद विज्ञान वीथिका, डॉú दयानन्द भार्गव, पृú 17)

18. भास्करीयगोलमीमांसा, प्रोú देवी प्रसाद त्रिपाठी
19. स ऐक्षत प्रजापतिः इमं वा आत्मनः प्रतिमामसृक्षि ता वा एताः प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त–अग्निः (पृथिवी) इन्द्रः सोमः (चन्द्रमाः) परमेष्ठी प्राजापत्यः।" शतपथ ब्राह्मण।।11/1/6/13–14।।
20. त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका।– शाङ्ख्यायन ब्राह्मण।।6/20।।
21. तिस्त्रोभूमीर्धारयन्त्रीरुत द्युन्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु। (ऋú 2/27/8)
22. वि यस्तस्तम्भषळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्। (ऋú 164/6)
23. यजुर्वेद (40/9)
24. परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं भारस्वतीं रश्मिवतीमा या दिवं भास्यापृथिवी मोर्वन्तरिक्षं दिवं यच्छ सूर्यस्त्वाभिपातु।। (मैत्रायणी संहिता 2/8/14)
25. 1. ऋतमेव परमेष्ठी। (तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/5/5)
2. आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठ। (शतपथ ब्राú 8/2/3/13)
26. ए ऐक्षत प्रजापतिः इमं..... इदं सर्वमन्नं च। (शतपथ ब्राú 11/1/6/13–14)
27. ऐतरेय ब्राú (1/2/2)
28. ऋú (6/76/1)
29. 1. "अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।" (ऋú 10/115/1)
2. "अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदयानि।" (शú ब्राú 9/1/1/23)
3. तिस्त्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः।
30. "स न मन्येतायमेवाग्निरिति। अप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्चते।" (निरुक्त 7/4)
31. वेद विज्ञान वीथिका, डॉú दयानन्द भार्गव (पृú 173)
32. "अथापि वैश्वानरीयो द्वादश कपालो भवति।" (निरुक्त –7/20–30)
33. 'एकविंशो वाऽस्य भुवनस्य विषुवान् द्वादश मासाः प×चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः' (जैमिनीय ब्राह्मण 2/389)
34. आदित्यस्त्वेव सर्वऽऋतवः। यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा संगवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराहनोऽथ शरद्यदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः।" (शतपथ 2/2/3/9)
35. दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निः, अयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैः।" (ऋú 1/161/14)
36. ऋú (1/115/1)
37. ऋú (10/88/15)
38. वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य, डॉú विष्णु कान्त वर्मा, भाग–2
39. निरुक्त (7/6)
40. शú ब्राú (9/3/1/3)
41. अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं वभूव।। ऋú (10/125/8)
42. शुú यजुú, (34/3)
43. ताण्ड्य ब्राú (6/9/2)
44. मैत्रायणी संहिता (3/2/2)